IJAER/Feb-March 2015/Volume -4/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

डॉ. रामविलास शर्मा और जातीय चेतना

डॉ. देवेन्द्र सिंह
व्याख्याता–हिन्दी
महारानी श्रीजया राजकीय महाविद्यालय
भरतपुर (राजस्थान)

(i) अर्थः जाति और जातीयता

'जाति' शब्द अनेकार्थी है। यह शब्द 'कबीला, कुटुंब, गोत्र, बिरादरी, वंष, शाखा, समूह, स्वजन, कम्यूनिटी' तथा नेषन आदि के अर्थ में व्यवहृत होता रहा है।[1] लेकिन "मुख्यतः यह हिन्दू समाज के एक विभाग तथा किसी विषिष्ट मानव समाज के विभाग के रूप में ही अधिक प्रचलित है।"[2] **'जाति'** शब्द का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द **'नेषन'** किसी मानव समुदाय के लिए प्रचलित है। **'जाति'** को आमतौर किसी विषिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों अथवा किसी विषिष्ट भाषा–भाषियों के समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जैसे "भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती है। इन भाषाओं के अपने–अपने प्रदेष हैं। इन प्रदेषों में रहने वाले लोगों को **'जाति'** की संज्ञा दी जाती है। वर्ण व्यवस्था वाली जाति–पाँति से इस **'जाति'** का अर्थ बिल्कुल भिन्न है। किसी भाषा को बोलने वाली, उस भाषा क्षेत्र में बसने वाली इकाई का नाम जाति है।"[3]

किसी पारिभाषिक शब्द को अर्थ के अलावा उसके लक्षणों के आधार पर और अच्छी तरह समझा जा सकता है। **स्टालिन** की प्रसिद्ध परिभाषा के अनुसार जाति के लक्षणों "सामान्य आवास भूमि, सामान्य संस्कृति, सामान्य भाषा, सामान्य ऐतिहासिक परम्परा आदि के साथ मुख्य बात यह है कि जातियाँ आधुनिक पूँजीवादी विकास की देन हैं।"[4] स्पष्ट है कि ये सभी लक्षण किसी मानव समुदाय के दीर्घकालीन सह अस्तित्त्व पर आधारित हैं। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि स्टालिन की परिभाषा में दिये गये सभी लक्षण जाति के बाह्य लक्षण ही कहे जा सकते हैं। जाति को जीवंत बनाये रखने के लिए उस जातीय समुदाय के मध्य जातीय एकता का बोध, आपसी सद्भाव और सहयोग, अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यक विरासत पर गर्व तथा जातीय विकास के लिए प्रतिबद्धता, समर्पण परिश्रम और त्याग की भावना अनिवार्य है। वस्तुतः ये किसी जाति के आन्तरिक लक्षण कहे जा सकते हैं। ये आन्तरिक लक्षण उस मानव समूह के आपसी लगाव या जातीय–ममत्व जातीय–चेतना या जातीयता कहलाता है। जैसे राष्ट्र के प्रति लगाव राष्ट्रीय चेतना का विकास करता है वैसे जाति के प्रति लगाव जातीय चेतना का विकास करता है।

किसी मानव समुदाय की जातीय चेतना उसके नित प्रति के सामाजिक व्यवहार में आसानी से देखी जा सकती है। साहित्य का पुष्प समाज की बगिया में ही खिलता है इसलिए उसमें सामाजिक व्यवहार की सुगन्ध स्वाभाविक है। सच्चा और महान साहित्यकार इस जातीय चेतना की उपेक्षा नहीं कर सकता। अतः साहित्य के मूल्यांकन और साहित्येतिहास लेखन में जातीय चेतना की पहचान आवष्यक है।

(ii) डॉ. रामविलास शर्मा की जातीय पृष्ठभूमि

डॉ॰ रामविलास शर्मा का जन्म अवध प्रदेष के पष्चिमी भाग वैसवाड़ा के ऊँच गाँव सानी में हुआ था। उनकी आत्मकथा का नाम 'अपनी धरती, अपने लोग' यह सिद्ध करता है कि उन्हें अपनी धरती से और इस धरती पर निवास करने वाले लोगों से अत्यधिक लगाव था। आत्मकथा पढ़ने पर हम यह भी कह सकते हैं कि उन्हें अपनी क्षेत्रीय भाषा साहित्य और संस्कृति से भी विषेष लगाव था। उन्होंने आत्मकथा में गाँव, खेत–खलियान, गंगा आदि वर्णन पूरे मनोयोग से किया है। रामविलास जी ने एक पत्र में अपनी बेटी स्वाति को लिखा था, "मैं अपने गाँव पर, अपने बाबा–दादी पर क्या लिखूँ, सिर्फ आमों पर लिखूँ तो पूरी किताब हो जाय। शायद ही हमारी जिन्दगी में कोई दिन ऐसा बीता हो जब हम गाँव के आस–पास कल्पना में चक्कर न लगाते हों।"[5] इसी पात्र में वे मच्छर, उसके पानी में कीड़े तथा अस्पृष्यता आदि का जिक्र भी करने से नहीं चूकते। अपने छोटे भाई अवस्थी जी को एक पत्र में गाँव न जाने का कारण लिखते हैं कि "हमारे साथ एक कठिनाई है। पुराने स्थान देखकर आँसू रोकने के लिए बहुत जोर लगाना पड़ता है, फिर भी उन्हें रोक नहीं पाते।"[6]

आत्मकथा के अलावा उनकी कविताओं में उनका जनपद अनेक स्थानों पर चित्रित हुआ है। पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

"एक घनी अमराई सा यह/ हृदय अवध का/ जहाँ सतत बहती है गंगा/ कोयल और पपीहे के स्वर से मुखरित है।/ चाँदी सी नम उर्वर धरती/ सई लोन नदियों के जल से भीग गई है।/ खेतों में सनयी गोहवा, सरसों की शोभा,/ तालों में खिलती सुन्दर कोकाबेली।"[7]

उन्हें अपने क्षेत्र और क्षेत्र के लोगों से लगाव मात्र भावुकता नहीं है जो केवल कविता के स्तर पर ही हो बल्कि वे उनके जीवन की ठोस बदलाव की आकांक्षा रखते हैं क्योंकि उस वैसवाड़े में आज भी विकास की गंगा नहीं पहुँच पा रही है। एक साक्षात्कार में उदय प्रकाष कहते हैं "आजादी के 55–56 साल बाद भी वह ऊँच गाँव सानी बिल्कुल लालटेने जल रही है, बैल गाड़ियाँ हैं, लोग उसी तरह रहते हैं, बच्चे धूल में धरौंदे बनाते हैं। दृश्य फिल्माने के लिए कोई नया सेट लगाने की जरूरत नहीं थी।"[8] वे केवल

साहित्यकार नहीं थे बल्कि सच्चे समाज सुधारक और समाज चिन्तक थे। तभी तो चाहते हैं कि "अपनी धरती की उर्वरता बनी रहे, अपने लोग गरीबी की रेखा से ऊपर आएँ, यह बहुतों का प्रयास है, मेरा भी है।. . . मेरे जीवन की सार्थकता और निरर्थकता भी इस प्रयास से जुड़ी हुई है।"[9] अर्थात वे अच्छी तरह जानते थे कि जनता के पेट के लिए पुस्तकें नहीं अनाज की जरूरत है। ऐसा था उनका जातीय लगाव।

एक साक्षात्कार में रामविलास शर्मा कहते हैं कि "मेरे गाँव का जो क्षेत्र रहा है, वह लोक संस्कृति से भँली प्रकार सिंचित है, बल्कि लोक संस्कृति का गढ़ है। वहाँ हर गाँव में चार–पाँच आदमी कम से कम ऐसे मिलेंगे जिनको पचीसों कविताएँ याद होंगी और खुद भी कविताएँ बनाते हैं। लोक कथाएँ उनका पचासों याद होंगी। इससे एक वातावरण बनता है और जो भी वहाँ रहता है, साहित्य से विमुख रहे तो बड़ा अभागी है।. . . मेरे जो पितामह थे वह स्वयं अच्छी कविता करते थे और पढ़ते भी थे।. . . बड़े भाई की रूचि साहित्य में गहरी थी।. . . मेरे पिताजी बहुत अच्छे मंच कलाकार थे।. . . मैंने उन्हीं से पाँचवी–छठी कक्षा में तुलसीदास को पढ़ना शुरु कर दिया था।"[10] स्पष्ट है कि उनका जनपद लोक संस्कृति की दृष्टि से भी सम्पन्न है। अपने बचपन में उन्हें लोक साहित्य का भरपूर संसर्ग प्राप्त हुआ था। लोक भाषा और लोक साहित्य के माध्यम से उन्हें लोक संस्कृति को आत्मसात करने का भरपूर अवसर प्राप्त हुआ था। बाबा के माध्यम से वे बचपन में ही अनेक साहित्यिक और लोक साहित्य की विधाओं से परिचित हो चुके थे। वे लिखते हैं कि "रात में सोने से पहले बाबा कविताएँ, कवित्त, सवैया, कुण्डलियाँ सुनाते थे, कभी–कभी भजन गाते थे। गिनती पहाड़ा सिखाते थे कहानियाँ सुनाते थे और अपने बारे में बताते थे।"[11]

गाँव के लोग अपनी आस्था, प्रतिभा और मनोरंजन के चलते तीज–त्यौहार और मेले–उत्सवों के अवसर पर लोक साहित्य का सृजन कर उसका भरपूर आनन्द लेते थे। लोक कविता और चलती कविता को डॉ॰ रामविलास शर्मा ने सदैव महत्वपूर्ण माना है क्योंकि इसमें लोक मानस, लोक प्रतिभा और समसामयिक विषयों की जानकारी समाहित रहती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में 'सत्तू और धान', 'गंगाराम बढ़ई', 'राधा–सुव्याधा', 'लोखरी के गीत', 'डमरू', 'समस्यापूर्ति' के अनेक उद्धाहरण देकर अपनी भावना स्पष्ट की है। साथ ही उन्होंने रामचरित मानस व हनुमान चालीसा का पाठ, आल्हा, रामलीला और नाटकों में अभिनय करने की बात भी स्वीकार की है।[12] उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपने जातीय परिवेष में उनके हृदय में साहित्यिक संस्कारों का बीजारोपण हो रहा था, तथा जातीय संस्कृति से निकटता और समझ बढ़ रही थी। यह वही लोक साहित्य था जिसे भारतेन्दु ने जातीय संगीत का नाम दिया था।

डॉ॰ रामविलास शर्मा का अपने क्षेत्र से लगाव तथा लोक संस्कृति में उनकी अभिरूचि के कारण उनके जीवन और साहित्य समीक्षा में जातीय चेतना एक दृढ़ संस्कार के रूप में उपस्थित है। उनका क्षेत्र साहित्यिकारों की दृष्टि से सम्पन्न, भेदभाव की भावना से ग्रसित तथा आर्थिक रूप से अत्यधिक पिछड़ा हुआ था। जिसकी चिन्ता उनके यहाँ स्पष्ट देखी जा सकती है। वे लिखते हैं कि "यह गाँव उस इलाके में है जिसने हिन्दी को प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', षिवमंगल सिंह 'सुमन', नंददुलारे वाजपेयी जैसे साहित्यकार दिये हैं। जनता की असंगठित क्षमता किसी की बात जोह रही है कोई आए, एक सूत्र में सबको बाँधे, फूट, गरीबी और बेकारी के दलदल से जनता को उबारे।"[13] दरअसल उन्होंने अपने जनपद की समस्याओं को जातीय प्रदेष और राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में एक साथ आत्मसात करते हुए अपनी हिन्दी जाति की अवधारणा का विकास किया था। उनकी हिन्दी जाति की अवधारणा की रेखांकित करने वाली विषेषता यह है कि निराला की तरह वे भी "अपनी श्रेष्ठता के साथ दूसरो की श्रेष्ठता के प्रति भी सजग है।"[14] अर्थात् उनकी जातीयता संकीर्ण जातीयता नहीं है। अतः हम कह सकते है कि जिस प्रकार मार्क्सवादी दृष्टि और राष्ट्रीयता के बीज उनके परिवेष में मौजदू थे उसी तरह जातीय चेतना के संस्कार भी उनके परिवेष का ही परिणाम है।

(iii) डॉ. रामविलास शर्मा के लेखन में जातीयता

डॉ॰ रामविलास शर्मा द्वारा लिखित भाषा सम्बन्धी पुस्तकें, हिन्दी जाति का साहित्य, भारतेन्दु हरिष्चन्द्र, भारतीय साहित्य की भूमिका, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेष, भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, अनेक निबन्धों तथा साक्षात्कारों के अध्ययन के उपरान्त यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि **हिन्दी जाति, हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य उनके लेखन के केन्द्रीय सरोकार हैं। भारत राष्ट्र और मार्क्सवाद के प्रति जो प्रतिबद्धता उनके लेखन में मिलती है उससे कहीं अधिक प्रतिबद्धता हिन्दी जातीयता के प्रति भी देखी जा सकती है।** जैसे उन्हें लोग मार्क्सवाद का आधिकारिक प्रवक्ता कहते हैं उसी तरह वे हिन्दी जाति के आधिकारिक प्रवक्ता तथा सबसे समर्थ व्याख्याकार कहे जाते हैं। हिन्दी भाषा को लेकर उनके समर्पण का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अंग्रेजी में लेखन की सामर्थ्य तथा हिन्दी में लिखने के उपेक्षा के खतरे के बावजूद उन्होंने अपना समस्त लेखन हठपूर्वक हिन्दी में ही किया। उन्होंने हिन्दी की लड़ाई हिन्दी माध्यम से लड़कर कथनी करनी की एकता की मिसाल कायम की है।

यह सत्य है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा से पूर्व मीर, भारतेन्दु, इकबाल, धीरेन्द्र वर्मा, सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, फैलेन, फ्रेडरिक पिन्काट आदि विद्वान अपनी–अपनी समझ के अनुरूप हिन्दी जाति की अवधारणा

को प्रस्तुत कर चुके थे लेकिन उन्होंने इसे जिस विस्तार, गहराई और गरिमा से प्रस्तुत किया है वह अभूतपूर्व है। इसीलिए **डॉ॰ पी॰सी॰ जोषी** उन्हें "भारतेन्दु और नवजागरण के मूल, स्रोत निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल को पकड़ने वाला तथा उसके लिए जीवन समर्पित करने वाला व्यक्ति मानते हैं।"[15] **डॉ॰ शम्भूनाथ** भी यही कहते हैं कि "इन 50 सालों में उनके जीवन की सबसे बड़ी साधना रही है हिन्दी जाति की अवधारणा, हिन्दी नवजागरण की परम्पराओं की खोज और हिन्दी आत्मसम्मान की प्रतिष्ठा।"[16]

उनकी हिन्दी जाति की अवधारणा सामाजिक, राजनैतिक, भाषिक और साहित्यिक दृष्टि से दूरगामी परिणाम देने वाली है। जातीय चेतना अब साहित्य मूल्यांकन का महत्त्वपूर्ण प्रतिमान बन चुकी है उसने हिन्दी साहित्येतिहास लेखन को भी प्रभावित किया है। **डॉ॰ मैनेजर पांडेय** ने उनकी जातीय चेतना को साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसके महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दी भाषा और साहित्य के जातीय स्वरूप की पहचान, खोज और रक्षा ही उनके लेखन का मुख्य उद्देष्य है। यह भी कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के जातीय रूप और विषेषताओं के विकास की समस्या ही उनकी इतिहास चिन्ता का मुख्य विषय है।. . . इस तथ्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में एक व्यापक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले रामविलास शर्मा पहले व्यक्ति हैं। उन्होंने भारतेन्दु हरिष्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल के संकेतों तथा सूत्रों को विकसित करते हुए हिन्दी जाति और हिन्दी भाषा के गठन, निर्माण और विकास का प्रमाणिक विवेचन किया है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की नई जमीन तैयार की है।"[17]

(iv) साहित्येतिहास लेखन के जातीय आधार

यह सर्वविदित है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा ने साहित्येतिहास लेखन के जातीय आधार की आधारषिला रखी है। प्रष्न यह है कि वे कौन–कौन से तत्त्व हैं जिनके आधार पर साहित्येतिहास परम्परा में जातीय चेतना का मूल्यांकन किया जा सके? **स्टालिन** की परिभाषा के अनुसार सामान्य **आवास भूमि**, सामन्य **संस्कृति**, सामन्य **भाषा** तथा सामान्य **ऐतिहासिक परम्परा** ऐसे लक्षण हैं जिनके आधार पर जातीय चेतना की पहचान की जा सकती है।[18] **डॉ॰ मैनेजर पांडेय** के अनुसार "हिन्दी भाषा और **साहित्य के जातीय स्वरूप** की पहचान के लिए हिन्दी **जाति का निर्माण**, **जातीय भाषा हिन्दी का विकास** तथा हिन्दी **साहित्य के जातीय रूप** के प्रष्न को महत्वपूर्ण मानते हैं।"[19] **डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी** मानते हैं कि "डॉ॰ शर्मा ने **'हिन्दी जाति'** और **'हिन्दी की जातीय चेतना'** को एक प्रतिमान के रूप में पेष किया है।"[20] उन्होंने **सांस्कृतिक विरासत पर गर्व, लोक प्रेम, राष्ट्र प्रेम, भाषा और साहित्य प्रेम** तथा **मानवीय मूल्यों की रक्षा** को उनकी

जातीय चेतना के आधार तत्त्व के रूप में माना है। स्वयं डॉ॰ रामविलास शर्मा ने हिन्दी साहित्य तथा भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण साहित्यकारों का मूल्यांकन जातीय चेतना के आधार पर किया है। लेकिन भारतेन्दु, निराला, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं सुब्रह्मण्य भारती को जातीय चेतना का प्रतिनिधि साहित्यकार माना है। इनके मूल्यांकन में उन्होंने जातीय प्रदेष व जातीय लोगों से **लगाव**, जातीय विरासत संस्कृति और इतिहास पर **गर्व,** जातीय **भाषा के विकास** में योगदान, जातीय **नवजागरण,** जातीय **समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण,** जाति के **राष्ट्रीय योगदान** तथा जाति की **संघर्ष क्षमता** को रेखांकित किया है।"[21]

निराला की जातीय प्रेरणा को सिद्ध करने के लिए डॉ॰ शर्मा ने उनके इस उद्धरण को उद्धत किया है–"हिन्दी भाषा भाषी अनेक प्रान्तों में रहते हैं। यह सब प्रान्त एक विषाल भू–भाग के अन्तर्गत हैं। इस भू–भाग के निवासियों का गौरवपूर्ण इतिहास है। उनके पूर्वज भारत के प्रति विषय के सूत्राधार रह चुके हैं अब यह जाति विरोधी शक्ति से लड़ते–लड़ते क्षीण हो गई है। दूसरे प्रदेषों के विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषियों का अपमान सहन करने की बात नहीं है।"[22] इस उद्धरण में क्षेत्रीय पहचान, जातीय गर्व और जातीय दुर्दषा के माध्यम से जातीय चेतना अपने सम्पूर्ण स्वरूप में उपस्थित है।

इस विवेचन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **जातीय पहचान, जातीय गौरव की प्रतिष्ठा, जातीय साहित्य का स्वरूप** एवं **जातीय रक्षा का प्रष्न,** साहित्येतिहास लेखन के जातीय आधार माने जा सकते हैं क्योंकि जातीय चेतना के लगभग सभी पक्षों, जातीय चेतना के लगभग सभी मुद्दों का समाहार इनके अन्तर्गत सम्भव है।

यहाँ यह भी समझ लेना आवष्यक है कि साहित्येतिहास लेखन के राष्ट्रीय और जातीय आधारों में कोई मूलभूत तात्त्विक अन्तर नहीं है। देष की सीमाओं के भीतर उनकी निष्ठा हिन्दी जातीयता का रूप ग्रहण करती है जबकि देष की सीमाओं के बाहर राष्ट्रीयता के रूप में हमारे सामने आती है। जातीय चेतना के संदर्भ में भारत स्थित अन्य जातियों के साथ सह अस्तित्त्व, सहयोग और सम्मान का भाव होना अनिवार्य है वहीं राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ में अन्य राष्ट्रों के साथ अतिरिक्त सजगता, प्रतिस्पर्धा और आक्रमकता का भाव आना सहज स्वाभाविक है। जातीय संदर्भ में हमारा ध्यान जातीय वैषिष्ट्य पर विषेष रूप से होता है वहीं राष्ट्रीय संदर्भ में जातियों की सामान्य विषेषताएँ को विषेष महत्व दिया जाता है। स्वयं रामविलास शर्मा जिस तरह **'जातीय कवि, राष्ट्रीय कवि** और **विष्व कवि'** में कोई अन्तर्विरोध नहीं मानते उसी तरह जातीय चेतना और राष्ट्रीयता के साहित्येतिहास लेखन के आधारों में कोई अन्तर्विरोध नहीं है।[23]

यों तो डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अपने लेखन में भारत की अन्य जातियों की जातीय–चेतना का यथा प्रसंग पर्याप्त उल्लेख किया है लेकिन मूलतः वे हिन्दी जातीयता के व्याख्याकार हैं। इसलिए उनकी जातीय चेतना की व्यवहारिक अभिव्यक्ति हिन्दी जाति के संदर्भ में ही हुई है। फिर भी इसका यह अभिप्राय नहीं हैं कि उनकी जातीयता के प्रतिमान केवल हिन्दी जाति व साहित्य तक ही सीमित हैं। अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य उनकी साहित्येतिहास दृष्टि का स्वयं एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है। वे अपनी पुस्तक **'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेष'** की भूमिका में स्वयं लिखते हैं कि **"भारत के सांस्कृतिक इतिहास का जो विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है, वह हिन्दी प्रदेष पर केन्द्रित है परन्तु उस तक सीमित नहीं है।"**[24]

□□**जातीय पहचान –** किसी जाति की पहचान के लिए उसकी आवास भूमि की पहचान, उसके जन समूह की पहचान तथा उसकी भाषा की पहचान आवष्यक होती है। जातीय साहित्यकार अपने लेखन में उसकी इस पहचान को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उजागर करता रहता है। साहित्य के विवेचन के आधार पर उसकी जातीय पहचान को रेखांकित किया जा सकता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने अपनी साहित्यिक आलोचना, प्रत्यक्ष लेखन एवं साक्षात्कारों में हिन्दी जाति की जातीय पहचान को पूरे मनोयोग से उजागर किया है।

□□**आवास भूमि की पहचान – हिन्दी प्रदेष** अपने वर्तमान रूप में आने से पूर्व अनेक क्षेत्रों और नामों से जाना जाता रहा है। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने हिन्दी प्रदेष के प्राचीन स्वरूप से लेकर आज तक शोध पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार पहले यह **सप्त सिन्धु** के नाम से जाना जाता था जिसके एक भाग में भरत जन रहते थे तथा जहाँ माहभारत का युद्ध हुआ। यह कुरुक्षेत्र हिन्दी और भारत की संस्कृति के स्रोत केन्द्र था। कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल, शूरसेन ये जनपद मिलकर ब्रह्मर्षि देष कहलाए तथा सस्वती और दृषद्वती के बीच का देष, ब्रह्मार्वत कहलाया। ब्रह्मर्षि देष ब्रह्मार्वत से हटकर है। इनके बाद एक नई इकाई **मध्य देष** का विकास हुआ जो हिमालय और विध्यांचल के बीच विनषन (कुरुक्षेत्र) के पूर्व और प्रयाग के पष्चिम का देष था। मध्यप्रदेष के बाद उससे बड़ी इकाई आर्यावर्त का उल्लेख है जो पूर्व समुद्र तथा पष्चिम समुद्र और हिमालय तथा विध्यांचल के मध्य था। तुर्क आक्रमणों के समय इसी प्रदेष को हिन्दुस्तान कहा गया है। सदी के अंतिम चरण में बिहार (झारखंड), उत्तर प्रदेष, (उत्तराखंड), मध्य प्रदेष (छत्तीसगढ़) राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेष और दिल्ली राज्यों को मिलाकर हिन्दी प्रदेष कहा जाता है क्योंकि इन सभी राज्यों की राजभाषा हिन्दी है।[25] हिन्दी के जातीय कवि इन नामों से अपनी क्षेत्रीय पहचान करते रहे हैं। यही स्थिति भारत के अन्य जातीय प्रदेषों की भी है।

□□**जन समूह की पहचान –** किसी जाति के जन समूह की पहचान के लिए उसके गठन के विभिन्न चरणों और उसके विस्तार की जानकारी आवष्यक है। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** ने भारत में आधुनिक जातियों की विकास प्रक्रिया पर सर्वाधिक गंभीर और प्रमाणिक कार्य किया है। उनके अनुसार "जाति वह मानव समुदाय है जो व्यापार द्वारा पूँजीवादी सम्बन्ध के प्रसार के साथ गठित होती है।" इस परिभाषा के बाद वे जाति के गठन की प्रक्रिया को बताते हुए लिखते हैं कि "सामाजिक विकास क्रम में मानव समाज पहले जन या गण के रूप में गठित होता है। सामूहिक श्रम और सामूहिक वितरण गण समाज की विषेषता है और उसके सदस्य आपस में एक–दूसरे के रक्त सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्ध माने जाते हैं।" दूसरे चरण में "इन गण समाजों के छटने पर लघु जातियाँ बनती हैं जिनमें उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है और नये श्रम विभाजन के आधार पर भारतीय वर्ण व्यवस्था जैसी समाज–व्यवस्था का चलन होता है।"[26] सम्पत्ति भेद, वर्ण भेद, भूस्वामी और पुरोहितों द्वारा शोषण, स्थायी निवास आदि इस समाज की विषेषताएँ हैं। इनके निवास स्थान को जनपद तथा इन्हें **'जन'** कहा जाता है। जनपदों में अलगाव की स्थिति होती है।[27] और अंत में तीसरे चरण में "पूँजीवादी युग में इन्हीं लघु जातियों से आधुनिक जातियों का निर्माण होता है।"[28] "यह तीसरी अवस्था व्यापारिक पूँजीवाद की है। जनपदों का आपसी विनिमय, आपसी अलगाव में क्रमषः कमी, वित्त का चलन, व्यापारी वर्ग का जन्म, शहरों का निर्माण, वर्ण विघटन का प्रारम्भ, सामंती सम्बन्ध भी शेष रहते हैं तथा व्यापारियों की प्रमुखता इस अवस्था की महत्वपूर्ण विषेषताएँ है।"[29] "इस तरह सामाजिक गठन के नये रूप का जन्म होता है। इसे हम जाति कहते हैं। जाति हमेषा सामंती व्यवस्था के जनों के मेल से बनती है। अनेक जनपदों के मेल से जातीय प्रदेष का निर्माण होता है।"[30]

यहाँ डॉ॰ शर्मा के लेखन में 'जन' को लेकर भ्रम की स्थिति बनती है। एक ओर वे **'भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ'** नामक पुस्तक में वे पहली अवस्था को **'गण या जन'** दूसरी को **'लघु जाति'** तीसरी अवस्था को **'जाति'** कहते है।[31] दूसरी ओर **'हिन्दी जाति का साहित्य'**[32] तथा **'परम्परा का मूल्यांकन'**[33] में वे पहली अवस्था का **'गण या कबीला'** दूसरी अवस्था को **जन** तथा तीसरी अवस्था को **'जाति'** कहते हैं।

डॉ॰ शर्मा के अनुसार "भरत, कोसल मागध, कुरु, पांचाल आदि वैदिक गणों के ब्रज, अवध बुदेलखंड, मगध, मालवा तथा मिथिला आदि जनपदों का निर्माण हुआ। वे इन्हीं जनों या लघु जातियों से आधुनिक हिन्दी भाषी जाति का निर्माण मानते हैं। इस तरह से निर्मित भारत में अब बंग्ला, मराठी, तमिल, कन्नड़ आदि बहुस सी जातियाँ निवास कर रही हैं।"[34]

□□**भाषा की पहचान –** आवास भूमि व जन समूह के अलावा जातीय भाषा किसी जाति की पहचान का विषेष महत्वपूर्ण साधन है। भारत की अधिकांष जातियों की पहचान उनकी भाषाओं के आधार पर ही की जाती रही है। यह बात अलग है कि अनेक मामलों में क्षेत्र, जनसमूह और भाषा को एक ही अथवा मिलते जुलते नाम से पहचानने लगते है। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** ने हिन्दी भाषा के विकास और स्वरूप पर तो ऐतिहासिक कार्य किया ही है इसके साथ अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भी अध्ययन महत्वपूर्ण है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा जातीय भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में वैदिक, संस्कृत पालि, प्राकृत अपभ्रंष के परम्परागत रेखीय विकास को स्वीकार नहीं करते है। उनका मानना है कि "देषी भाषाएँ अर्थात संस्कृत प्राकृत से भिन्न जनपदीय भाषाएँ कम से कम उतनी पुरानी है जितना पुराना भरत का नाट्यषास्त्र है। सामंती व्यवस्था के ह्रास के साथ देषी भाषाओं और संस्कृत–प्राकृत भाषातंत्र का अंतर्विरोध तीव्र होता जाता है।"[35] भारत में सबसे पहले तमिल में साहित्य रचना प्रारम्भ होती है उस समय मलायालम, कन्नड़, ब्रज, अवधी, कष्मीरी आदि सभी भाषाएँ जनपदीय रूप में अस्तित्त्व में थी। "उनका मानना है कि यदि हम प्राकृत अपभ्रंष से देषी भाषाओं की उत्पत्ति के सिद्धान्त को छोड़कर जनपदीय भाषाओं की उपस्थिति को इनसे पूर्व की मानें तो हमें साहित्य का इतिहास लिखने में सुविधा होगी।"[36] जातीय भाषाओं का विकास जातीय निर्माण की प्रक्रिया के साथ होता है। "भारत में जातीय गठन की प्रक्रिया सब जगह एक ही समय सम्पन्न नहीं होती, फिर भी मोटे रूप से 12वीं सदी को नई जातियों के निर्माण का प्रारम्भिक काल मान सकते हैं। इस समय आधुनिक भाषाओं में जातीय साहित्य की रचना आरम्भ होती है।"[37] स्वाभाविक रूप से साहित्य रचना से पूर्व भाषाओं की उपस्थिति होती है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में "प्रत्येक भाषा को बोलियों का एक समुदाय मानना चाहिए। इस समुदाय में से कुछ बोलियों के आधार पर जातीय भाषा के रूप में किसी एक बोली का विकास बाद की प्रक्रिया है।"[38] भाषा विकास की प्रक्रिया गणभाषा फिर जनपदीय भाषा और अंत में जातीय भाषा के रूप में सम्पन्न होती है। इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि "गण समाजों के विघटन से जनपद बने, अनेक गण भाषाओं के बीच एक भाषा, अन्य गण भाषाओं के तत्त्व आत्मसात करते हुए, जनपदीय भाषा बनी। अन्य गण भाषाओं के बीच एक भाषा उभरी, अन्य जनपदीय भाषाओं के तत्त्व आत्मसात करते हुए, जातीय भाषा बनी। अन्य जनपदीय भाषाओं का स्थान गौण हो गया।"[39]

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में डॉ॰ रामविलास शर्मा मानते हैं कि "हिन्दी जाति के निर्माण में, जनपदों के सांस्कृतिक आदान–प्रदान में, ब्रज, अवधी, खड़ी बोली तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस भूमिका के लिए आवष्यक परिस्थितियाँ व्यापारियों ने अनेक नगरों को व्यावसासिक सम्बन्धों द्वारा जोड़कर तैयार की।"[40] "प्रारम्भ में ब्रज भाषा और अवधी सांस्कृतिक और आपसी व्यवहार की भाषा बन चुकी थी लेकिन बाद में आगरा और दिल्ली की महत्ता के चलते अवधी इस दौड़ में पिछड़ गई और ब्रज तथा खड़ी बोली राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने लगी। प्रमाण स्वरूप कबीर भोजपुरी क्षेत्र के थे पर उनकी रचनाएँ अधिकतर ब्रज और खड़ी बोली में हैं। . . .कबीर की तरह नामदेव ब्रज और खड़ी बोली दोनों क्रिया रूपों का व्यवहार करते हैं।"[41] बाद में राजनैतिक कारणों के चलते इस दौड़ में ब्रजभाषा भी पिछड़ गई और जातीय भाषा के रूप में खड़ी बोली शेष रह गई। डॉ॰ शर्मा इस का कारण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "हिन्दी प्रदेष का इतिहास सम्मत नाम हिन्दुस्तान है, उसकी भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है। हिन्दी का आधार दिल्ली और उसके निकटवर्ती प्रदेषों की बोली–खड़ी बोली बनी, क्योंकि दिल्ली राजनीतिक और आर्थिक जीवन का प्रमुख केन्द्र थी।"[42] खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण में ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि उपभाषाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है और भविष्य में भी वह इनसे अपने आपको जीवन्त भाषा बनाये रख सकेगी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा की जातीय चेतना में जातीय पहचान का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि जातीय पहचान के अभाव में जातीय–चेतना का आधार ही समाप्त हो जाता है। जातीय भूमि, जातीय समूह एवं जातीय भाषा अपने स्वरूप एवं विकास के कारण साहित्य के इतिहास को हर स्तर पर प्रभावित करते हैं।

□□**जातीय गौरव –** साहित्य में जातीय चेतना की अभिव्यक्ति जातीय पहचान के साथ–साथ जातीय गौरव के रूप में भी होती है। जातीय साहित्यकार इतिहास, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के गौरव पूर्ण अंषों की पहचान कर अपने जातीय गर्व की प्रतिष्ठा करता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा जातीय गर्व के सकारात्मक पक्ष के ही समर्थक हैं नकारात्मक पक्ष के नहीं। वे यह भली–भाँति जानते थे कि "जातीय गर्व यदि अहंकार का रूप ले ले तो वह अन्य जातियों के अपमान का कारण भी बन सकता है। ऐसी जातीयता विष है। इसके विपरीत जो जातीयता अपनी और अन्य जातियों को अपनी पहचान और विकास के लिए प्रेरित करे, अन्य जातियों को सकारात्मक पक्ष को स्वीाकर करे, वह अमृत है।"[43]

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने विषेषकर बंग्ला और तमिल जाति के सकारात्मक पक्षों को अपने लेखन बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है फिर भी वे मूलतः हिन्दी जातीयता के ही प्रवक्ता हैं। हिन्दी के जातीय गौरव

की प्रतिष्ठा उनके लेखन का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य है। उन्होंने न केवल हिन्दी जाति की विरासत की अभूतपूर्ण व्याख्या की है बल्कि हिन्दी लोकजागरण, हिन्दी नवजागरण और राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी प्रदेष की भूमिका के माध्यम से वर्तमान हिन्दी जाति के राष्ट्रीय और अन्तर राष्ट्रीय महत्व को भी रेखांकित किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत हिन्दी जाति के सम्पूर्ण गौरव (भौगोलिक, राजनैतिक, दार्षानिक, आर्थिक, कलात्मक और साहित्यिक) का यह चित्र भव्य और अनुपम है–"दक्षिण में तमिलनाडू, उत्तर में कष्मीर, पूर्व में असम और पष्चिम में गुजरात, दूर–दूर के इन प्रदेषों को जोड़ने वाला, इनके बीच स्थित विषाल हिन्दी प्रदेष है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, अर्थषास्त्र की रचना यही हुई। यहीं कालिदास और भवभूति ने अपने ग्रंथ रचे और मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यों की आधार भूमि यही प्रदेष था। उत्तर काल में दिल्ली आगरा इस प्रदेष के बहुत बड़े नगर बने। ये व्यापार के बहुत बड़े केन्द्र थे और सांस्कृतिक केन्द्र भी थे। तुर्क वंषी राजाओं ने यहीं रहकर शतब्दियों तक एक बहुत बड़े राज्य का संचालन किया था। विद्यापति, कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे कवि इसी क्षेत्र में हुए। इस प्रदेष में प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन का जन्म हुआ। अपने स्थापत्य सौंदर्य से संसार को चकित कर देने वाला ताजमहल भी इसी प्रदेष के आगरा नगर में है।. . . इसलिए भारत राष्ट्र के निर्माण में और भारतीय संस्कृति के विकास में हिन्दी प्रदेष की निर्णायक भूमिका स्वीकार करनी चाहिए।"[44]

प्रत्येक जाति को अपने इतिहास की पहचान होनी चाहिए क्योंकि "मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का बोध स्मृति के सहारे होता है।. . . यही स्थिति जाति और राष्ट्र की है। अस्मिता बोध की पहली शर्त है इतिहास बोध। हिन्दी भाषी जनता अपना इतिहास पहचाने बिना न स्वयं को पहचान सकती है, न राष्ट्र को।"[45] "हिन्दी प्रदेष की विरासत संसार भर में श्रेष्ठ है। हिन्दी जाति की विरासत की तुलना केवल यूनानी और इटालियन जातियों से की जा सकती है क्योंकि उन्होंने ही वहाँ प्राचीन काल में उच्च कोटि की सभ्यता का विकास देखा था।"[46]

हिन्दी प्रदेष का प्राचीन युग अथवा विरासत हर दृष्टि से भारत व विष्व के लिए प्रेरणास्पद और प्रतिस्पर्धा का कारण रही है। "स्वाधीन चिन्तन के उस युग में भाषा विज्ञान, शरीर विज्ञान और समाज विज्ञान के क्षेत्रों में बड़ी उन्नति हुई। इस समय भारत संसार का सबसे धनी देष था। यहाँ की भाषा संस्कृत और नंद वंष, मौर्य वंष, गुप्त वंष के शासकों ने सम्पूर्ण राष्ट्र का एकीकरण किया। यहाँ की धन की ख्याति से आकर्षित होकर अनेक आक्रमण हुए लेकिन कभी विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। तुर्क आक्रमणकारी राजनैतिक रूप से विजयी होने के बाद भी सांस्कृतिक रूप से परास्त हुए।"[47]

यहाँ की मंडियाँ विष्व प्रसिद्ध थीं इसलिए आधुनिक काल में भी पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापारी यहाँ से माल खरीदने के लिए आपस में लड़े थे। जीत अंग्रेजों की हुई। उनके द्वारा हुई धन की लूट से भारत का पतन प्रारम्भ हुआ और यूरोप में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। इस तरह यूरोप की औद्योगिक और विज्ञान की प्रगति के मूल में भारतीय धन ही था।[48] राष्ट्रीय कवि मैथिलीषरण गुप्त को इसलिए यह लिखना पड़ा था कि "यह ठीक है, पष्चिम बहुत ही कर रहा उत्कर्ष है, पर पूर्व गुरु उसका यही पुरु वृद्ध भारतवर्ष है।"[49]

अंग्रेज जाति, जिनके साम्राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता था, जो विष्व में अपराजित सिद्ध हो चुकी थी, उसे 1857 के युद्ध में इसी हिन्दी जाति ने पराजय का स्वाद चखाया था। "अवध, रूहेलखण्ड और भोजपुरी क्षेत्र के अंग्रेजी फौज में भर्ती हुए किसानों ने ही अंग्रेजी फौज में विद्रोह कर उन्हें देष से निकालने के लिए जबरदस्त संघर्ष किया यह अलग बात है कि आपसी समन्वय के अभाव और भारतीय सामंतों द्वारा अंग्रेजों की सहायता करने के कारण युद्ध में उनकी हार हुई। लेकिन यह युद्ध हिन्दी प्रदेष में, हिन्दी जनता द्वारा लड़ा गया हिन्दी जाति का जातीय संग्राम था। जिस पर हिन्दी जाति को आज भी गर्व है।"[50]

हिन्दी प्रदेष की साहित्यकह विरासत भारत में ही नहीं विष्व साहित्य में अनेक दृष्टियों से अनुपम हैं। डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी के भक्ति साहित्य को मध्यकालीन नहीं यूरोप की तरह आधुनिक साहित्य मानते हैं। वे साफ कहते हैं कि यदि 'षेक्सपीय और मिल्टन आधुनिक कवि है तो सूर और तुलसी भी आधुनिक कवि हैं।' हिन्दी साहित्य का नवजागरण और आधुनिक अंग्रेजों की देन नहीं बल्कि भक्ति साहित्य के 'लोकजागरण का अलगा चरण है।' हिन्दी प्रदेष के साहित्यकार और साहित्य अनेक दृष्टियों से यूरोप की तुलना में श्रेष्ठ है विषेषकर अपनी "लोकवादी और यथार्थवादी दृष्टि के कारण।"[51]

□□**साहित्य का जातीय स्वरूप –** डॉ॰ रामविलास शर्मा प्रत्येक महान साहित्यकार को सर्वप्रथम जातीय साहित्यकार मानते हैं क्योंकि "महान साहित्यकार विदेषी भाषा में नहीं, अपनी जातीय भाषा में साहित्य रचते हैं। सबसे पहले उनकी दृष्टि के सामने उनकी जाति के लोग होते हैं, इसलिए उनका जातीय साहित्यकार होना अनिवार्य है।"[52] उसके बाद वह अपने देष की चिंता करता है तथा वह विष्व मानवता के विरुद्ध भी नहीं जा सकता। इस तरह उनकी दृष्टि में जनपदीय, जातीय, राष्ट्रीय और विष्व साहित्यकार में कोई अन्तर्विरोध नहीं है।[53] वे आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को जातीय साहित्य के रूप में समझने के पक्षधर हैं क्योंकि "साहित्य को जातीय विकास से जोड़ने का अर्थ है सामाजिक परिस्थितियों से उसके सम्बन्ध को पहचानना। . . .जातीय भाषा का विकास ही किन्हीं परिस्थितियों में होता है। उन्हें

पहचाने बिना न भाषा का विकास समझ में आ सकता है, न साहित्य का।. . . हिन्द जाति की अवधारणा को अस्वीकार करने का अर्थ है साहित्य में प्रतिबिम्बित हिन्दी जाति की क्षमता का तिरस्कार करना।"[54] जातीय चेतना के माध्यम, उसके विचार तथा उसकी विषेषताओं के संदर्भ डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि "जातीय चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम प्रादेषिक भाषा होती है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्य भारती, निराला के साहित्य में बांग्ला, तमिल और हिन्दी के प्रति उत्कष्ट प्रेम देखा जा सकता है। ये भाषाएँ ही उनके राष्ट्रवाद और मानवतावाद की अभिव्यक्ति का माध्यम है। जातीय चेतना वह उत्स है जिसमें राष्ट्रप्रेम और मानव प्रेम की धाराएँ फूटती हैं। जातीय चेतना केवल भाषागत, प्रदेष गत चेतना नहीं हैं। उसमें साम्राज्य विरोध, सामन्ती रूढ़ियों का विरोध तथा समाज को पुनर्गठित करने की धारणाएँ शामिल है।"[55]

डॉ॰ शर्मा किसी जाति के सम्पूर्ण साहित्य को जातीय परम्परा का साहित्य नहीं मानते। क्योंकि "जिस समाज में अनेक वर्ग हों, रहन–सहन और व्यवहार के अनेक स्तर हों, उसमें साहित्य की परम्परा भी अनेक होती हैं। मोटे तौर पर जैसे एक दरबारी परम्परा, दूसरी गैर दरबारी परम्परा। इनमें जो परम्परा किसी जाति के सांस्कृतिक विकास में सहायक होती है, उसे हम **'जातीय परम्परा'** कहते हैं।"[56] वे अन्य स्थान पर लिखते हैं कि "जो कविता हिन्दी जाति के बहुसंख्यक भाग की संघर्षषील चेतना की जड़ों को सींचती है, वह इस भाग को अहिन्दी जातियों से जोड़ती है वह हिन्दी की जातीय कविता है।"[57] इस तरह यहाँ वे उसे प्रगतिषील कविता का पर्याय बना देते हैं।

सारांषतः हम कह सकते हैं रामविलास शर्मा की दृष्टि में "जो साहित्य जातीय विरासत के श्रेष्ठतम अंषों को विकसित करे, जातीय संस्कृति और स्वाभिमान की रक्षा करे, जातीय चेतना का विकास करे, जातीय चिंताओं को वहन कर सके, जातीय संघर्ष में सहयोग करे, यथार्थवाद तथा कलात्मक सौंदर्य से भरपूर हो, वही सच्चे अर्थों में जातीय साहित्य है। वैयक्तिक चिंताओं को ढ़ोने वाला, फूत्कार सीत्कार से युक्त कलात्मक मानदंडों की उपेक्षा करने वाला साहित्य या कला की एकांगी सेवा करने वाला साहित्य जातीय साहित्य नहीं हो सकता।"[58] कहने की आवष्यकता नहीं कि हिन्दी का तमाम साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है लेकिन सब नहीं। **"वैज्ञानिक चिंतन का प्रसार, सामाजिक आंदोलनों से जुड़े हुए साहित्य में यथार्थवादी धारा का विकास, संघर्ष की उदात्त अभिव्यंजना, ये हिन्दी जाति के साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। इन्हें ध्यान में रखते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास का विवेचन उचित होगा।"**[59]

□□**जातीय रक्षा –** अतीत के अध्ययन का उद्देष्य वर्तमान की परख और भविष्य का निर्माण होता है। जातीय अतीत के अध्ययन का उद्देष्य भी जातीय संकटो की पहचान और उसकी रक्षा ही है। डॉ॰ रामविलास

शर्मा ने जातीय साहित्यकारों की जातीय चिंताओं के मूल्यांकन के साथ–साथ हिन्दी जाति की समस्त चिंताओं और चुनौतियों पर गवेषणात्मक कार्य किया है। जातीय चेतना का अभाव, जातीय विघटन (धार्मिक, वर्णगत और भाषाई) के खतरे, हिन्दी भाषा की चुनौतियाँ हिन्दी प्रदेष के एकीकरण की समस्या, हिन्दी प्रदेष का पिछड़ापन तथा संघर्षषील और उत्कृष्ट साहित्य परम्परा के विकास की चिंता उनके लेखन में आसानी से देखी जा सकती हैं।

वे इस बात से बहुत दुःखी थे कि हिन्दी प्रदेष में बड़े से बड़े नेता होने के बावजूद उन्होंने अपनी भाषा और अपने प्रदेष की उपेक्षा की जबकि तिलक ने मराठी, राजगोपालाचार्य ने तमिल तथा महात्मा गाँधी ने गुजराती में लिखा था। "संसार की दूसरी सबसे बड़ी जाति के बुद्धिजीवी उसके अस्तित्त्व से अपरिचित हों, यह हमारे इतिहास की सबसे बड़ी विडम्बना है।"[60] कहने की आवष्यकता नहीं कि स्वयं डॉ॰ शर्मा ने हिन्दी जाति की चिंता की केवल सैद्धांतिक स्तर पर ही नहीं की बल्कि सारे पुरस्कारों की राषि हिन्दी जाति को समर्पित कर अपना जीवन भी हिन्दी लेखन को समर्पित कर दिया, उपेक्षा के खतरे के बावजूद।

जातीय चेतना का अभाव जातीय विघटन की भूमि को उपजाऊ बनाता है। जातीय विघटन के जो बीज अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए बोए थे उन्हें स्वतंत्र भारत के शासक न केवल पल्लवित पुष्पित कर रहें हैं बल्कि उस फसल को काटने के लिए मानवता की हत्या करने से भी बाज नहीं आते। वे सोचते हैं कि "भारत की युवा शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। युवा शक्ति अगड़ी पिछड़ी जातियों में बँट जाए, इन जातियों के युवा आपस में लड़ते रहें, यदि इसके साथ हिन्दू धर्म और इस्लाम की रक्षा के लिए दस पाँच जगह मारकाट का आयोजन हो जाए तो व्यवस्था और भी सुरक्षित हो जाएगी।"[61]

आज हिन्दी प्रदेष में समाज, राजनीति और साहित्य के स्तर पर जातिवाद और साम्प्रदायिकता का जहर चरम सीमा पर है। इसमें आरक्षण आग में घी का काम कर रहा है। डॉ॰ रामविलास शर्मा प्रमाण सहित यह सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारत में न तो शूद्र अस्पृष्य थे और न ही पिछड़े हुए थे। यह स्थिति अंग्रेजी राज का परिणाम है।[62] वे सावधान करते हैं कि, वर्णभेद के आधार पर साहित्य की व्याख्या करने से भी हम कभी सत्य तक नहीं पहुँच सकते है।[63] हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "अस्पृष्यता का रोग सामंतवाद द्वारा पैदा किया गया और अंग्रेजो द्वारा बढ़ाया गया है।"[64]

इसी तरह डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव और सहयोग को साहित्य, संस्कृति, संगीत, स्थापत्य और राजनीति के स्तर पर ऐतिहाकिस तथ्यों के आलोक में सिद्ध कर चुके हैं कि यह विद्वेष भी अंग्रेजी कूटनीति का परिणाम है। इस समस्या का हल केवल हिन्दी जातीयता है अतः हमें हिन्दी–उर्दू के साहित्य का इतिहास एक कौम का साहित्य मानकर लिखना चाहिए इससे साहित्येतिहास के अनेक नए सत्य उजागर होंगे।[65]

उन्हें इस बात का खेद है कि जहाँ समस्त भारत में जातीय भाषाओं के आधार पर राज्यों का गठन किया गया वहीं हिन्दी प्रदेष में इस सिद्धान्त को किनारे रख उसे अनेक प्रान्तों में बाँट दिया गया और आजादी के बाद अनेक राजनेताओं और साहित्यकारों द्वारा उपभाषाओं के पक्ष में आंदोलन चलाकर हिन्दी प्रदेष को लगातार विभाजित किया जा रहा है। "समाज और भाषा का विकास वृहत्तर इकाइयों में संगाठित होकर ही हो रहा है। ऐसी स्थिति में बोलियों के आधार पर राज्यों का गठन एक प्रतिगामी कदम है।"[66] "इससे हमारी राष्ट्रीय एकता और जातीय एकता खंडित होती है।"[67] अतः बोलियों के आंदोलन अवैज्ञानिक, प्रतिगामी, अदूरदर्षी, अतार्किक और षडयंत्र के हिस्से मात्र हैं।[68] वे "हिन्दी भाषा के साथ बोलियों के अस्तित्व को सांस्कृतिक, राजनैतिक और स्वयं उसके विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं लेकिन इस आधार पर हिन्दी जाति का राजनैतिक और जातीय विभाजन उन्हें कतई मंजूर नहीं है।"[69]

संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलने के बावजूद आज तक व्यवहार में राष्ट्र भाषा न बन पाना हिन्दी समाज के लिए एक अहम चुनौती और राष्ट्र के लिए लज्जाजनक बात है। भारतीय भाषाओं के विरोध, उर्दू के अलगाव तथा हिन्दी की बोलियों की महत्वकांक्षा के चलते आज हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी जमी बैठी है तो इसके लिए भारतीय राजनीति का चरित्र और स्वयं हिन्दी जाति में जातीय चेतना का अभाव ही जिम्मेदार है। इस स्थिति से निपटने के लिए डॉ॰ रामविलास शर्मा अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को महत्व देने, उर्दू को देवनागरी में लिखने तथा हिन्दी की उपभाषाओं के मध्य आपसी सहयोग स्थापित करने का प्रस्ताव करते हैं। हिन्दी को भारतीय जनता में सम्पर्क स्थापित करने तथा राजकार्य हेतु राष्ट्रभाषा और राजभाषा की भूमिका निभानी है न कि उसे प्रादेषिक भाषाओं पर थोपा जाना है। भारतीय प्रादेषिक भाषाओं का महत्व बरकरार रहेगा। हिन्दी को केवल अंग्रेजी का स्थान लेना है प्रादेषिक भाषाओं का नहीं।[70]

आज भारत में यदि हिन्दी प्रदेष को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता, यदि यहाँ आपसी फूट और अलगाव की स्थिति खतरनाक स्तर पर है और यहाँ की जनता अपनी जातीय अस्मिता में अपरिचित

है तो वे इसके पीछे एक मूलभूत कारण है **हिन्दी प्रदेष का आर्थिक पिछड़ापन।** डॉ॰ शर्मा आर्थिक अवनति के कारणों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "सामंतवाद का गहरा असर, बड़ी–बड़ी ताल्लुके दारियाँ, वर्णव्यस्था की कट्टरता, हिन्दू–मुस्लिम भेदभाव और अंग्रेजों की कूटनीति–इन सब कारणों से यहाँ की औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध रहा है।"[71] उनकी इच्छा है कि "यहाँ के मजदूरों और किसानों की हालत, मध्यवर्ग के बेकार नौजवानों की हालत में तब्दीली होनी चाहिए।" इसके लिए "इनका संगठन होना चाहिए और इस संगठन में मदद करने के लिए अगर हिन्दी प्रदेष की एकता का आंदोलन चलाया जाए तो इससे मदद मिल सकती है।"[72] क्योंकि "हिन्दी प्रदेष के पिछडेपन का सबसे बड़ा कारण है कि यह बहुत से जनपदों और राज्यों में बंटा हुआ है।"[73]

आर्थिक विष्लेषक एवं प्रोफेसर आनन्द प्रधान ने अभी एक लेख हिन्दी पट्टी के पिछड़ेपन को लेकर लिखा है जिसमें वे लिखते हैं कि "सच यह है कि उत्तर प्रदेष हिन्दी पट्टी के उन राज्यों में है, जिनके पिछड़ेपन, गरीबी, भुखमरी, बीमारी आदि के कारण उन्हें बीमारू राज्यों में शुमार किया जाता है।". . . पिछड़ेपन के कारणों उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि "एक साजिष और नीति के तहत उत्तर भारत के राज्यों को पीछे किया गया है, आजादी के बाद भी कमोबेष उपनिवेषवादी नीतियाँ जारी रही हैं।. . . उत्तर भारत के राज्य आजाद भारत में भी सस्ते श्रम की आपूर्ति के लिए इस्तेमाल किये जाते रहे हैं।. . . लगता है कि उत्तर भारतीय राज्य सस्ते श्रम के बाड़े बने रहने के लिए अभिषप्त हैं। इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए जिस राजनीतिक इच्छा शक्ति की जरूरत है वह मौजूदा राजनीतिक दलों और उनके नेतृत्व में सिरे से गायब है।"[74] यहाँ देखने की बात यह है कि एक अर्थषास्त्री और साहित्यकार के विष्लेषण में आष्चर्य जनक समानता है और समाधान भी दोनों के पास एक ही है। हिन्दी जाति की जागरुकता। यहाँ यह भी देखना चाहिए कि डॉ॰ शर्मा ने अपने लेखन को कितनी गम्भीरता से लिया था। यह उनकी जातीय चेतना का प्रमाण है और बहुज्ञता का भी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी जाति के अतीत में बहुत कुछ ऐसा है जिस पर गर्व किया जा सके लेकिन वर्तमान में ऐसा भी बहुत कुछ है जो हमारे लिए लज्जाजनक और चिंतनीय है। "हिन्दी प्रदेष प्रतिक्रियावाद का गढ़ हो यह हमारे लिए गर्व की बात नहीं है। संसार में निरक्षरों की सबसे बड़ी संख्या भारत में है और भारत में उनकी सबसे बड़ी संख्या हिन्दी प्रदेष में है। आर्थिक विकास में भारत के कई दूसरे प्रदेषों से हिन्दी प्रदेष पिछड़ा हुआ है। जातीय चेतना में यह प्रदेष तमिलनाडु, महाराष्ट्र या बंगाल से तो पिछड़ा हुआ है ही, वह कष्मीर और पंजाब जैसे साम्प्रदायिकताग्रस्त क्षेत्रों से भी पिछड़ा हुआ है।"[75]

अनेक लोग हिन्दी जाति के एकीकरण से भयभीत हैं जबकि डॉ॰ शर्मा स्पष्ट कहते हैं कि "जातीय गठन के साथ अन्तर्जातीय मैत्री भी आवष्यक है।. . . एक जातीय प्रदेष के अन्दर दूसरी भाषा और जाति के अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा भी आवष्यक है।"[76] आज जातीय एकीकरण और जातीय चेतना के अभाव में हिन्दी प्रदेष अनेक चुनौतियों से जूझता हुआ लगातार पिछड़ता जा रहा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "यहाँ की कमजोरी अन्ततः राष्ट्र की कमजोरी है।"[77]

जहाँ तक **'जातीय चेतना'** को साहित्येतिहास लेखन के मानदंड के रूप में स्थापित करने का सवाल है तो इस सम्बन्ध में डॉ॰ मैनेजर पांडेय इस प्रयास और उसके महत्व के बारे में लिखते हैं कि "रामविलास शर्मा ने हिन्दी साहित्य के जातीय रूप और विषेषताओं को ध्यान में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का नया सैद्धांतिक आधार ही तैयार नहीं किया है, उन्होंने इसके व्यवहारिक रूप को विकसित करने का भी प्रयास किया है। . . .साहित्य के जातीय स्वरूप की पहचान भारतीय साहित्य के इतिहास लेखन के संदर्भ में भी यह विषेष उपयोगी है। साहित्य के जातीय स्वरूप के आधार पर भारतीय साहित्य का इतिहास लेखन अनेक गलत धारणाओं को दूर करके हमारे जातीय और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के विकास में सहायक हो सकता है।"[78]

संदर्भ सूची

1 vjfoUn dqekj & lgt lekUrj dks'k] i`ñ 354

2 laf{kIr fgUnh 'kCn lkxj & ukxjh çpkj.kh lHkk] dk'kh] i`ñ 345

3 jkefoykl 'kekZ & fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx&2] i`ñ 68

4 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 14&15

5 m)`r fot;eksgu 'kekZ & dy ds fy,] vad 40&41 i`ñ 74

6 m)`r fot;eksgu 'kekZ & dy ds fy,] vad 40&41 i`ñ 74

7 m)`r fot;eksgu 'kekZ & dy ds fy,] vad 40&41 i`ñ 77&78

8 mn;çdk'k & dy ds fy,] vad 40&41 i`ñ 70

9 jkefoykl 'kekZ & viuh /kjrh vius yksx] Hkkx&1] i`ñ 11

10 jkefoykl 'kekZ & vkt ds loky vkSj ekDlZokn] i`ñ 39

11 jkefoykl 'kekZ & viuh /kjrh vius yksx] i`ñ 25

12 jkefoykl 'kekZ & viuh /kjrh vius yksx] Hkkx&1] i`ñ 17&25

13 jkefoykl 'kekZ & fojke fpà] i`ñ 20

14 jkefoykl 'kekZ & fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx] 2] i`ñ 71

15 lEikñ t;ukjk;.k & dy ds fy,] MkWñ 'kekZ fo'ks"kkad] i`ñ 78

16 vkykspuk] lglzkCnh] vad 5 i`ñ 54

17 eSustj ikaMs; & lkfgR; vkSj bfrgkl n`f"V] i`ñ 167

18 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 15

19 eSustj ik.Ms; & lkfgR; vkSj bfrgkl n`f"V] i`ñ 167&168

20 jkepUæ frokjh & Ñfr fpUru vkSj ewY;kadu lanHkZ] i`ñ 79

21 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2 i`ñ 382&602

22 jkefoykl 'kekZ & fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx] 2] i`ñ 70

23 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2 i`ñ 552

24 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2 i`ñ 13

25 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2 i`ñ 677

26 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 28

27 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 13

28 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 28

29 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 14

30 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 15

31 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 28

32 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 13&14

33 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kadu] i`ñ 6

34 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 28

35 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 144

36 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 123

37 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 143

38 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; ds bfrgkl dh leL;k,¡] i`ñ 90

39 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 19&20

40 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 28&29

41 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 21&23

42 jkefoykl 'kekZ & Hkk"kk vkSj lekt] i`ñ 281&282

43 jkefoykl 'kekZ & fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx&2 i`ñ 70&71

44 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&01] i`ñ 9&10

45 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; uotkxj.k vkSj ;wjksi] i`ñ 328&329

46 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 161&162

47 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&01] i`ñ 12

48 jkefoykl 'kekZ] fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx& 03] i`ñ 26

49 eSfFkyh'kj.k xqIr & Hkkjr Hkkjrh] vrhr [k.M in la[;k 64

50 jkefoykl 'kekZ] ijEijk dk ewY;kadu] i`ñ 21&24

51 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 97] 151] 171] 164] 10

52 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&01] i`ñ 552

53 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&01] i`ñ 552

54 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 16

55 jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&01] i`ñ 7

56 jkefoykl 'kekZ] ladYi] leh{kk n'kd] i`ñ 206&207

57 jkefoykl 'kekZ] ladYi] leh{kk n'kd] i`ñ 187

58 jkefoykl 'kekZ] fojke fpà] i`ñ 141&142

59 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 138

60 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 16

61 jkefoykl 'kekZ] Lok/khurk laxzke] cnysa ifjçs{;] i`ñ 244

62 jkefoykl 'kekZ] Lok/khurk laxzke] cnysa ifjçs{;] i`ñ 238

63 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 8&82

64 jkefoykl 'kekZ] fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] Hkkx& 02] i`ñ 27&29

65 (1) jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 38] 58

(2) jkefoykl 'kekZ] vkpk;Z 'kqDy vkSj fgUnh vkykspuk] i`ñ 178

(3) f'kodqekj feJ] vkykspuk ds çxfr'khy vk;ke] i`ñ 84&85

(4) jkefoykl 'kekZ] vkt ds loky vkSj ekDlZokn] i`ñ 418&419

(5) jkefoykl 'kekZ] fujkyk dh lkfgR; lk/kkuk] Hkkx&02] i`ñ 49&50

66 jkefoykl 'kekZ] fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 19&20

67 lkfgR; vdkneh ls HksaVokrkZ% m)`r lk{kkRdkj] vad&310] i`ñ 182

68 jkefoykl 'kekZ] ijEijk dk ewY;kadu] i`ñ 216&217

69 jkefoykl 'kekZ] ekDlZokn vkSj çxfr'khy lkfgR;] i`ñ 42

70 (1) jkefoykl 'kekZ] Hkk"kk vkSj lekt] i`ñ 425&467

(2) jkefoykl 'kekZ] Hkkjr dh Hkk"kk leL;k] i`ñ 38&122

(3) jkefoykl 'kekZ] fojke fpà] i`ñ 314&315

(4) jkefoykl 'kekZ] Hkk"kk ;qxcks/k vkSj dfork] i`ñ 24

(5) jkefoykl 'kekZ] fujkyk dh lkfgR; lk/kuk] i`ñ 64

71 MkWñ jkefoykl 'kekZ] vkpk;Z jkepUæ 'kqDy vkSj fgUnh vkykspuk] i`ñ 177

72 lEikñ vt; frokjh] vkt ds loky vkSj ekDlZokn] i`ñ 311

73 lEikñ vt; frokjh] vkt ds loky vkSj ekDlZokn] i`ñ 309

[74] jktLFkku if=dk] e/; i`"B] fnukad 15@2@12 t;iqj

[75] jkefoykl 'kekZ] Hkkjrh; uotkxj.k vkSj ;wjksi] i`ñ 328&329

[76] jkefoykl 'kekZ] ekDlZokn vkSj çxfr'khy lkfgR;] i`ñ 262

[77] jkefoykl 'kekZ] vkt ds loky vkSj ekDlZokn] i`ñ 311

[78] eSustj ik.Ms;] lkfgR; vkSj bfrgkl n`f"V] i`ñ 179&180